हुसैनआरा खातून और अन्य

बनाम

गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना

(Hussainara Khatoon and Others

V.

Home Secretary, State of Bihar, Patna)

(9 मार्च, 1979)

(न्यायाधिपति पी० एन० भगवती और डी० ए० देसाई)

संविधान, 1950—अनुच्छेद 21—यदि विचारणाधीन कैदियों को उस अवधि से भी अधिक समय तक कारावास में रखा जाता है, जिस अवधि के लिए उन्हें दोषसिद्ध होने पर कारवास का दण्ड दिया जा सकता था, तो उससे संविधान के अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण होता है।

• संविधान, 1950—अनुच्छेद 21 और 39-क— अकिंचन और निर्धन अभियुक्तों को निःशुल्क विधिक सेवा प्रदान करने की बात अनुच्छेद 21 में अन्तर्निहित है और अनुच्छेद 39-क में इसके लिए स्पष्ट निर्देश है।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)—धारा 309—अभियुक्त व्यक्तियों का विचारण शीघ्रता से किया जाना चाहिए, जिससे कि उन्हें ऐसे मामलों में, जिनमें उनकी जमानत मंजूर नहीं की जाती, अनावश्यक रूप से अधिक समय तक कारावास में न रहना पड़े।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 32—उच्चतम न्यायालय अभियुक्तों के शीघ्रता से विचारण करने के अधिकार के लिए न्यायालय आदि की पर्याप्त व्यवस्था करने का निदेश दे सकता है।

प्रत्यर्थी बिहार राज्य में बहुत बड़ी संख्या में पुरुष, स्त्री और बच्चे लम्बी कालावधियों से विचारणाधीन कैदियों के रूप में कारावास में बन्द थे। इनमें से अनेक मामलों में विचारणाधीन कैदी उस अवधि से भी अधिक समय तक कारावास में रह चुके थे जिसके लिए उन्हें दोषसिद्ध होने पर कारावास का दण्ड दिया जा सकता था। ये कैदी अपनी निर्धनता के कारण अपनी जमानत देने और अपने बचाव के लिए वकील की सेवा प्राप्त करने में असमर्थ थे। उनके विषय में समाचारपत्र में विवरण प्रकाशित होने पर प्रस्तुत पिटीशन फाइल किया गया। दण्ड की अधिकतम सीमा से भी अधिक समय तक कारावास में रह चुके विचारणाधीन कैदियों की उन्मुक्ति का आदेश देते हुए और निर्धन विचारणाधीन कैदियों के लिए निःशुल्क विधिक सेवा की व्यवस्था का निदेश देते हुए तथ्य प्रत्यर्थी को अभियुक्तों के शीघ्रता से विचारण के लिए अतिरिक्त न्यायालय आदि की आवश्यकता का अनुमान लगाने में उच्चतम न्यायालय को समर्थ बनाने वाली सामग्री प्रस्तुत करने का आदेश देते हुए,

अभिनिर्धारित—वे सम्बन्धित चार्ट में उपवर्णित विचारणाधीन कैदी उन कालावधियों से भी अधिक समय तक जेल में रहे हैं जो उनकी दोषसिद्धि पर उनके दण्ड की अधिकतम अवधि हो सकती थी। इससे दारुण स्थिति प्रकट होती है और मानवीय मूल्यों के प्रति चिन्ता का पूर्ण अभाव झलकता है। इससे हमारी विधिक और न्यायिक पद्धति की क्रूरता प्रकट होती है जो दैहिक स्वाधीनता के पूर्ण रूप से अन्यायोचित अपवंचन के परिणामस्वरूप होने वाले इतने अतीव दुःख और कष्ट से भी अप्रभावित रह सकती है। यह समझना वास्तव में कठिन है कि राज्य सरकार इन विचारणाधीन कैदियों के निरन्तर कारावास के प्रति, जो उनका विचारण प्रारम्भ हुए बिना ही वर्षों तक चलता रहा, असावधान कैसे रह सकी। बिहार राज्य में न्यायपालिका भी दोष के अपने उत्तरदायित्व से नहीं बच सकती, क्योंकि वह इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं हो सकती थी कि हज़ारों विचारणाधीन कैदी ऐसे विचारण की प्रतीक्षा में जेलों में सड़ रहे हैं जो कभी भी प्रारम्भ हुआ प्रतीत नहीं होता। सुसंगत सूची में उल्लिखित इन विचारणाधीन कैदियों के निरन्तर निरोध को न्यायोचित कैसे ठहराया जा सकता है जबकि वे पहले ही उस अवधि से अधिक समय तक जेल में रहे हैं जिसके लिए, दोषसिद्ध होने पर, उन्हें दण्ड दिया जा सकता था। वास्तव में जेल की कुछ अवधि उनके जमाखाते में है। सुसंगत सूची में उल्लिखित इन विचारणाधीन कैदियों को तत्काल उन्मुक्त कर दिया जाए,

क्योंकि उनके निरोध का जारी रखा जाना स्पष्ट रूप से विधिविरुद्ध और संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन उनके मूल अधिकार का अतिक्रमण करने वाला है। (पैरा 5)

अनेक ऐसे विचारणाधीन कैदी हैं जिन पर जमानतीय अपराधों का आरोप है, किन्तु जो अभी भी सम्भवतया इसलिए जेल में हैं कि उनकी ओर से जमानत का कोई आवेदन नहीं किया गया है या वे इतने निर्धन हैं कि जमानत नहीं दे सकते। यह असमान्य बात नहीं है कि जिन विचारणाधीन कैदियों को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है वे जमानत पर छूटने के अपने अधिकार से अनभिज्ञ होते हैं और अपनी निर्धनता के कारण वे वकील की जो उन्हें जमानत के लिए आवेदन करने के उनके अधिकार से परिचित करा सके और इस निमित्त मजिस्ट्रेट को समुचित आवेदन करके जमानत पर छूटने में उनकी सहायता कर सके, सेवाएं प्राप्त करने में असमर्थ होते हैं। विधिक प्रक्रिया के फायदे निर्धनों तक पहुंचाना, अन्याय के विरुद्ध उनकी संरक्षा करना और उनके सांविधानिक और कानूनी अधिकारों को सुनिश्चित करना तब तक सम्भव नहीं हो सकता जब तक कि उन्हें निःशुल्क विधिक सेवाएं प्रदान करने के लिए राष्ट्रव्यापी विधिक सेवा कार्यक्रम न हो। यह सुस्थिर है कि जब अनुच्छेद 21 में यह उपबन्ध है कि किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्रकार से वंचित नहीं किया जाएगा तब इतना ही पर्याप्त नहीं है कि विधि द्वारा उपबन्धित प्रक्रिया जैसी कोई चीज़ हो बल्कि जिस प्रक्रिया के अधीन किसी व्यक्ति को उसके प्राण या स्वाधीनता से वंचित किया जा सकता है, उसे युक्तियुक्त, उचित वह न्यायसंगत होनी चाहिए। जो प्रक्रिया ऐसे अभियुक्त व्यक्ति को जो इतना निर्धन है कि वकील नहीं रख सकता और इसलिए जिसे विधिक सहायता के बिना विचारण करवाना पड़ता है, विधिक सेवा उपलभ्य नहीं होती, उस प्रक्रिया को युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत समझना सम्भव नहीं है। जिस कैदी को न्यायालय की प्रक्रिया के माध्यम से अपनी स्वाधीनता प्राप्त करने का प्रयास करना है, उसके लिए युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत प्रक्रिया का यह आवश्यक लक्षण है कि उसे विधिक सेवा उपलभ्य होनी चाहिए। (पैरा 6)

अनुच्छेद 39-क में भी इस बात पर जोर दिया गया है कि निःशुल्क विधिक सेवा युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत प्रक्रिया का अभिन्न अंग है, क्योंकि

इसके बिना आर्थिक या अन्य अशक्यताओं वाला व्यक्ति न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित हो जाएगा। अतः निःशुल्क विधिक सेवा युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत प्रक्रिया का ऐसे व्यक्ति के लिए आवश्यक लक्षण है जिस पर किसी अपराध का अभियोग है और इसके बारे में यह अवश्य ही अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वह अनुच्छेद 21 की गारण्टी में अन्तर्निहित है। यह ऐसे प्रत्येक अभियुक्त व्यक्ति का सांविधानिक अधिकार है जो निर्धनता, गरीबी या सम्पर्कहीनता की स्थितियों जैसे कारणों से वकील रखने या विधिक सेवा प्राप्त करने में असमर्थ हैं और राज्य को यह परमादेश है कि वह अभियुक्त व्यक्ति के लिए उस दशा में वकील की व्यवस्था करे जब मामले की परिस्थितियों और न्याय की आवश्यकताओं में ऐसा अपेक्षित है परन्तु निस्सन्देह यह तभी होगा जबकि अभियुक्त व्यक्ति ऐसे वकील की व्यवस्था पर आपत्ति नहीं करता। (पैरा 7)

यह नितान्त आवश्यक है कि अपराधों के अभियुक्त व्यक्तियों का विचारण शीघ्रता से किया जाए जिससे कि ऐसे मामलों में जिनमें जमानत, विवेकाधिकार का समुचित प्रयोग करते हुए, नामंजूर कर दी जाती है, अभियुक्त व्यक्ति नितान्त आवश्यक कालावधि से अधिक तक के लिए जेल में न रहे, क्योंकि ऐसे अनेक विचारणाधीन कैदी हैं जो कारावास की उस अधिकतम अवधि से आधे से अधिक तक के लिए जेल में रह चुके हैं जिसके लिए उन्हें दोषसिद्ध होने पर दण्डादिष्ट किया जा सकता था। (पैरा 8)

राज्य अभियुक्त के लिए शीघ्रता से विचारण की व्यवस्था करने की अपनी सांविधानिक बाध्यता से वित्तीय या प्रशासनिक अक्षमता का विवेचन करके नहीं बच सकता। राज्य को यह सांविधानिक परमादेश है कि वह शीघ्रता से विचारण सुनिश्चित करे और इस प्रयोजन के लिए जो कुछ भी आवश्यक है वह राज्य को करना पड़ेगा। उच्चतम न्यायालय की भी, लोगों के मूल अधिकारों के संरक्षक के रूप में और सजग प्रहरी के रूप में राज्य को आवश्यक निदेश जारी करके, जिनमें सकारात्मक कार्यवाही करना, जैसे अन्वेषणतन्त्र में बढ़ोतरी करना और उसे सबल बनाना, नए न्यायालय स्थापित करना, नए न्यायालय भवनों का निर्माण करना, न्यायालयों के लिए अधिक कर्मचारिवृन्द और साधनों की व्यवस्था करना, अतिरिक्त न्यायाधीशों की नियुक्ति करना और शीघ्रता से विचारण को सुनिश्चित करने के लिए

1979(3) eILR(PAT) SC 1

प्रकल्पित अन्य उपाय करना सम्मिलित है, अभियुक्त के शीघ्रता से विचारण के मूल अधिकार को प्रवृत्त करने की सांविधानिक बाध्यता भी है। (पैरा 10)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1979]	[1979] 3 उम० नि० प०= [1978] 3 एस० सी० सी० 544 : **माधव हयवादन राव होसकोट बनाम महाराष्ट्र राज्य** **(Madhava Hyavadan Rao Hoskot *V.* State of Maharashtra);**	6
[1979]	[1979] 1 उम० नि० प० 243= [1978] 1 एस० सी० सी० 248 : **मेनका गांधी बनाम भारत संघ** **(Maneka Gandhi *V.* Union of India);**	6
[1974]	(1974) 377 एफ० सप्लीमेण्ट 995 : **जेम्स रेम बनाम जस्टिस बेंजामिन मैल्कम** **(James Rhem *V.* Justice Benjamin Malcolm);**	10
[1972]	(1972) 409 यू० एस० 25=35 लाइयर्स एडीशन सैकण्ड 530 : **जान रिचर्ड आर्जरसिंगर बनाम रेमण्ड हैमलिन** **(Jon Richard Argersinger *V.* Raymond Hamlin);**	6
[1972]	(1972) 349 एफ० सप्लीमेण्ट 881 : **नजारेथ गेट्स बनाम जान कोलियर** **(Nazareth Gates *V.* John Collier);**	10
[1972]	(1972) 349 एफ० सप्लीमेण्ट 278 : **एन० एच० न्यूमैन बनाम स्टेट ऑफ अलबामा** **(N. H. Newman *V.* State of Albama);**	10

1979(3) eILR(PAT) SC 1

[1971]	(1971) 330 एफ० सप्लीमेण्ट 707 : **चार्ल्स जोन्स बनाम सोल विट्टनबर्ग** (Charles Jones *V.* Sol Wittenberg);	10
[1970]	(1970) 309 एफ० सप्लीमेण्ट 362 : **जस्टिस लारेन्स हाल्ट बनाम राबर्ट सार्वेर** (Justice Lawrence Holt *V.* Robert Sarver);	10
[1968]	(1968) 404 एफ० सैकण्ड 571 : **विलियम किंग जैकसन बनाम ओ० ई० बिशप** (William King Jackson *V.* O E. Bishop);	10
[1962]	(1962) 372 यू० एस० 335= 9 लाइयर्स एडीशन सैकण्ड 799 : **गिडियोन बनाम वैनराइट** (Gideon *V.* Wainwright).	6

आरम्भिक अधिकारिता : 1979 का रिट पिटीशन सं० 57.

पिटीशनरों की ओर से श्रीमती के० हिंगोरानी
प्रत्यर्थी की ओर से श्री यू० पी० सिंह

अभिलेख-अधिवक्ता

पिटीशनरों की ओर से श्रीमती के० हिंगोरानी
प्रत्यर्थी की ओर से श्री यू० पी० सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति पी० एन० भगवती ने दिया।

न्यायाधिपति भगवती— .

यह रिट पिटीशन 26 फरवरी, 1979 को हमारे द्वारा दिए गए निदेशों के अनुसरण में पुनः हमारे समक्ष सुनवाई के लिए प्रस्तुत किया गया है और आज प्रत्यर्थियों की ओर से तीन अतिरिक्त प्रति-शपथपत्र फाइल किए गए हैं : एक मृणमय चौधरी, सहायक महानिरीक्षक कारावास ने दूसरा बागेश्वरी प्रसाद पाण्डे, अधीक्षक, पटना केन्द्रीय जेल ने और तीसरा प्रदीप

कुमार गांगुली, अधीक्षक, मुजफ्फरपुर केन्द्रीय जेल ने फाइल किया था। मृणमय चौधरी ने अपने शपथपत्र में 26 फरवरी, 1979 को पहले ही प्रस्तुत 17 जेलों में विचारणाधीन कैदियों की विशिष्टियों के अतिरिक्त, बिहार राज्य की 48 जेलों में विचारणाधीन कैदियों की विशिष्टियां दी हैं। हमने अपने 26 फरवरी, 1979 वाले आदेश द्वारा बिहार राज्य को निदेश दिया था कि वह पुनरीक्षित चार्ट फाइल करे जिसमें स्थूल रूप से दो प्रवर्गों में, अर्थात, छोटे अपराधों और बड़े अपराधों में विभाजित करने के पश्चात् विचारणाधीन कैदियों के प्रत्येक वर्ष के अलग-अलग आंकड़े दर्शित किए जाएं, किन्तु बिहार राज्य ने इस निदेश का पालन नहीं किया है। तथापि, मृणमय चौधरी ने अपने शपथपत्र में हमें विश्वास दिलाया है कि न्यायालय द्वारा दिए गए विभिन्न निदेशों के सम्बन्ध में अनेक बातों को तत्परता से कार्यान्वित किया जा रहा है, किन्तु समय की कमी के कारण उसे 3 मार्च, 1979 तक पूरा करना सम्भव नहीं हुआ है। हम यह निदेश देते हैं कि बिहार राज्य सभी 65 जेलों में विचारणाधीन कैदियों के सम्बन्ध में पुनरीक्षित चार्ट आज से तीन सप्ताह के भीतर ऐसी रीति से फाइल करेगा जिससे स्पष्ट रूप से प्रत्येक वर्ष के लिए यह दर्शित होगा कि उनमें से प्रत्येक किस तारीख से जेल में है और दो प्रवर्गों में, अर्थात्, छोटे अपराधों और बड़े अपराधों में मोटे तौर से विभाजन किया जाएगा। हमें यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि जहां तक "संरक्षात्मक अभिरक्षा" में स्त्रियों का सम्बन्ध है, राज्य ने मृणमय चौधरी के शपथपत्र में हमें विश्वास दिलाया है कि "संरक्षात्मक अभिरक्षा" में स्त्रियों को जेलों में से कल्याण विभाग द्वारा चलाई जा रही संस्थाओं में अन्तरित करने के लिए कार्यवाही की गई है और सरकार द्वारा इस विषय में निदेश जारी कर दिए गए हैं। हमें आशा और विश्वास है कि हमारे तारीख 26 फरवरी, 1979 वाले पूर्ववर्ती आदेश में दिए गए इस निदेश का सरकार द्वारा पालन किया जाएगा और हमें उसके अनुपालन की रिपोर्ट विहित समय के भीतर प्रस्तुत की जाएगी।

2. यद्यपि हमने अपने तारीख 26 फरवरी, 1979 वाले आदेश द्वारा बिहार राज्य को यह निदेश दिया था कि वह 3 मार्च, 1979 को या उससे पूर्व समुचित शपथपत्र फाइल करके न्यायालय को यह सूचित करे कि वे विचारणाधीन कैदी जिनकी विशिष्टियां 26 फरवरी, 1979 वाले प्रतिशपथ में दी गई हैं, धारा 167(2) के परन्तुक के अनुपालन में मजिस्ट्रेटों के समक्ष नियत काल पर पेश किए गए थे या नहीं, तथापि हम यह पाते हैं कि

बागेश्वरी प्रसाद पाण्डे द्वारा इस निदेश के उत्तर में अपने शपथपत्र में केवल यह प्रकथन किया गया है कि कैदी संख्या 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9 और 17, जो अपने उन्मोचन से पूर्व पटना केन्द्रीय जेल में परिरुद्ध थे, 'जब कभी न्यायालयों ने चाहा', न्यायालय के समक्ष नियमित रूप से पेश किए गए थे। हमने जो निदेश दिए थे, इस प्रकथन से उसका अनुपालन नहीं होता। हम बिहार राज्य से ऐसे समुचित शपथपत्र में जोकि आज से दो सप्ताह के भीतर फाइल किए जाएं, यह जानना चाहेंगे कि हमने जिन विचारणाधीन कैदियों को उनके स्वीय बन्धपत्र के आधार पर उन्मोचित करने का निदेश दिया था, क्या उन्हें धारा 167(2) के परन्तुक की अपेक्षाओं का अनुपालन करके मजिस्ट्रेटों के समक्ष नियत काल पर पेश किया गया था या नहीं। हम सुझाव देना चाहेंगे कि राज्य को वे तारीखें देनी चाहिएं जिनको ये विचारणाधीन कैदी मजिस्ट्रेटों द्वारा समय-समय पर न्यायिक अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित किए गए थे जिससे कि हम यह समाधान कर सकें कि परन्तुक की अपेक्षाओं का पालन किया गया था।

3. हम प्रदीप कुमार गांगुली के शपथपत्र में यह प्रकथन भी पाते हैं कि कैदी संख्या 10, 11, 12, 13, 15, 16 और 18, जिन्हें उनकी उन्मुक्ति से पूर्व मुजफ्फरपुर केन्द्रीय जेल में परिरुद्ध रखा गया था, "जब कभी न्यायालयों ने चाहा" न्यायालय के समक्ष नियमित रूप से पेश किए गए थे। जैसा कि हमने बता दिया है, यह प्रकथन पूर्ण रूप से असंतोषजनक है और इससे न्यायालय को यह जानकारी नहीं मिलती कि इन विचारणाधीन कैदियों को मजिस्ट्रेटों द्वारा समय-समय पर किन तारीखों को प्रतिप्रेषित किया गया था। जब ये विशिष्टियां प्रस्तुत कर दी जाएंगी, तभी हम धारा 167(2) के परन्तुक की अपेक्षाओं के अनुपालन के सम्बन्ध में अपना समाधान कर सकते हैं और इसीलिए हम बिहार राज्य को निदेश देते हैं कि वह आज से दो सप्ताह के भीतर शपथपत्र फाइल करके हमें ये विशिष्टियां दे।

4. हम उन तारीखों की विशिष्टियां भी प्राप्त करना चाहेंगे जिनको प्रत्यर्थियों की ओर से प्रस्तुत रांची केन्द्रीय जेल में विचारणाधीन कैदियों की सूची की मद संख्या 4, 5, 6, 7, 8, 13, 21, 22, 24, 28, 29, 30, 43, 56, 69, 71, 72, 79, 85, 92, 96, 97, 101, 129, 133, 136 से 142, 165 से 167, 170 से 174, 177, 191, 199, 210 और 236 के सामने दिए गए विचारणाधीन कैदियों के सम्बन्ध में मजिस्ट्रेटों द्वारा समय-समय पर प्रतिप्रेषण आदेश किए गए थे। ये विचारणाधीन कैदी छह-सात

1979(3) eILR(PAT) SC 1

वर्ष से भी अधिक समय तक जेल में रहे हैं और हम अपना यह समाधान करना चाहेंगे कि उनके मामले में धारा 167(2) के परन्तुक की अपेक्षा का पालन किया गया था। राज्य सरकार को इन विशिष्टियों से युक्त शपथपत्र आज से तीन सप्ताह के भीतर दे देना चाहिए। बड़ी संख्या में ऐसे विचारणाधीन कैदी हैं जो लम्बी कालावधि से जेल में सड़ रहे हैं और धारा 167(2) के परन्तुक के अनुपालन के सम्बन्ध में अपना समाधान करने के प्रयोजन से हमारे लिए इन विचारणाधीन कैदियों के व्यक्तिगत मामलों की जांच करना सम्भव नहीं है, किन्तु हम पटना उच्च न्यायालय से यह निवेदन करना चाहेंगे कि वह बिहार राज्य द्वारा 26 फरवरी, 1979 और 5 मार्च, 1979 को हमारे समक्ष फाइल की गई विचारणाधीन कैदियों की सूचियों में से कुछ नामों को चुने और अपना यह समाधान करे कि इन विचारणाधीन कैदियों को मजिस्ट्रेटों द्वारा समय-समय पर नियत काल पर प्रतिप्रेषित किया गया है या नहीं, जैसा कि धारा 167(2) के परन्तुक द्वारा अपेक्षित है। हम बिहार राज्य को यह निदेश देना चाहेंगे कि वह विचारणाधीन कैदियों की इन सूचियों की प्रतियां आज से 10 दिन के भीतर पटना उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को दे दे।

5. बिहार राज्य की ओर से हमारे समक्ष विचारणाधीन कैदियों की जो सूचियां फाइल की गई हैं, उनसे हम यह पाते हैं कि वे विचारणाधीन कैदी जिनके नाम, श्रीमती हिंगोरानी ने आज फाइल किए गए चार्ट में उपवर्णित किए हैं, उन कालावधियों से भी अधिक समय तक जेल में रहे हैं जो उनकी दोषसिद्धि पर उनके दण्ड की अधिकतम अवधि हो सकती थी। इससे दारुण स्थिति प्रकट होती है और मानवीय मूल्यों के प्रति चिन्ता का पूर्ण अभाव झलकता है। इससे हमारी विधिक और न्यायिक पद्धति की क्रूरता प्रकट होती है, जो दैहिक स्वाधीनता के पूर्ण रूप से अन्यायोचित अपवंचन के परिणाम-स्वरूप होने वाले इतने अतीव दुख और कष्ट से भी अप्रभावित रह सकती है। हमारे लिए यह समझना वास्तव में कठिन है कि राज्य सरकार इन विचारणाधीन कैदियों के निरन्तर कारावास के प्रति, जो उनका विचारण प्रारम्भ हुए बिना ही वर्षों तक चलता रहा, असावधान कैसे रह सकी। बिहार राज्य में न्यायपालिका भी दोष के अपने हिस्से से नहीं बच सकती, क्योंकि वह इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं हो सकती थी कि हज़ारों विचारणाधीन कैदी ऐसे विचारण की प्रतीक्षा में जेलों में सड़ रहे हैं जो कभी भी प्रारम्भ हुआ प्रतीत नहीं होता। हम यह समझने में असफल रहे हैं कि श्रीमती हिंगोरानी की सूची में उल्लिखित इन विचारणाधीन कैदियों के निरन्तर निरोध को न्यायोचित

कैसे ठहराया जा सकता है जबकि हम यह पाते हैं कि वे पहले ही उस अवधि से अधिक समय तक जेल में रहे हैं जिसके लिए, दोषसिद्ध होने पर उन्हें दण्ड दिया जा सकता था। वास्तव में, जेल की कुछ अवधि उनके जमाखाते में है। अतः हम निदेश देते हैं कि इन विचारणाधीन कैदियों को जिनके नाम श्रीमती हिंगोरानी द्वारा फाइल की गई सूची में दिए गए हैं, तत्काल छोड़ दिया जाए, क्योंकि उनके निरोध का जारी रखा जाना स्पष्ट रूप से विधिविरुद्ध और संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन उनके मूल अधिकार का अतिक्रमण करने वाला है।

6. अनेक ऐसे विचारणाधीन कैदी हैं जिन पर जमानतीय अपराधों का आरोप है, किन्तु जो अभी भी सम्भवतया इसलिए जेल में हैं कि उनकी ओर से जमानत का कोई आवेदन नहीं किया गया है या वे इतने निर्धन हैं कि जमानत नहीं दे सकते। यह असामान्य बात नहीं कि जिन विचारणाधीन कैदियों को मजिस्ट्रेटों के समक्ष पेश किया जाता है, वे जमानत पर छूटने के अपने अधिकार से अनभिज्ञ होते हैं और अपनी निर्धनता के कारण वे ऐसे वकील की जो उन्हें जमानत के लिए आवेदन करने के उनके अधिकार से परिचित करा सके और इस निमित्त मजिस्ट्रेट को समुचित आवेदन करके जमानत पर छूटने में उनकी सहायता कर सके सेवाएं प्राप्त करने में असमर्थ होते हैं। कभी-कभी मजिस्ट्रेट भी अपने समक्ष पेश किए गए विचारणाधीन कैदियों को स्वीय बन्धपत्र के आधार पर छोड़ने से इन्कार कर देते हैं और, प्रतिभुओं सहित, धन-विषयक जमानत का आग्रह करते हैं, जिसे विचारणाधीन कैदी अपनी निर्धनता के कारण देने में असमर्थ होते हैं, और इसलिए विचारण से पूर्व उनकी उन्मुक्ति की सम्भाव्यता प्रभावी रूप से समाप्त हो जाती है। यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति पुकार-पुकार कर पर्याप्त और व्यापक विधिक सेवा कार्यक्रम चालू करने की बात कहती है, किन्तु अभी तक इन पुकारों का कोई प्रत्युत्तर मिला प्रतीत नहीं होता। हमारे विचार से विधिक प्रक्रिया के फायदे निर्धनों तक पहुंचाना, अन्याय के विरुद्ध उनकी संरक्षा करना और उनके सांविधानिक और कानूनी अधिकारों को सुनिश्चित करना तब तक सम्भव नहीं हो सकता जब तक कि उन्हें निःशुल्क विधिक सेवाएं प्रदान करने के लिए राष्ट्रव्यापी विधिक सेवा-कार्यक्रम न हो। अब **मेनका गांधी बनाम भारत संघ**[1] में इस न्यायालय के विनिश्चय के परिणामस्वरूप यह सुस्थिर है कि जब अनुच्छेद 21 में यह उपबन्ध है कि

[1] [1979] 1 उम० नि० प० 243=(1978) 1 एस० सी० सी० 248.

1979(3) eILR(PAT) SC 1

किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्रकार से वंचित नहीं किया जाएगा, तब इतना ही पर्याप्त नहीं है कि विधि द्वारा उपबन्धित प्रक्रिया जैसी कोई चीज हो, बल्कि जिस प्रक्रिया के अधीन किसी व्यक्ति को उसके प्राण या स्वाधीनता से वंचित किया जा सकता है, उसे 'युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत' होनी चाहिए। जो प्रक्रिया ऐसे अभियुक्त व्यक्ति को जो इतना निर्धन है कि वकील नहीं रख सकता और इसीलिए जिसे विधिक सहायता के बिना विचारण करवाना पड़ता है, विधिक सेवा उपलभ्य नहीं कराती, उस प्रक्रिया को 'युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत' समझना सम्भव नहीं है। जिस कैदी को न्यायालय की प्रक्रिया के माध्यम से अपनी स्वाधीनता प्राप्त करने का प्रयास करना है, उसके लिए 'युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत' प्रक्रिया का यह आवश्यक लक्षण है कि उसे विधिक सेवा उपलभ्य होनी चाहिए। इसलिए न्यायलय ने **माधव हयादनराव होसकोट** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] में बताया है कि "प्रक्रियागत जटिलताओं, विधिक निवेदनों और साक्ष्य की निकट से परीक्षा सहित, न्यायिक न्याय, वृत्तिक-प्रवीणता की ओर उन्मुख है और जहां एक पक्ष के लिए ऐसी समर्थक निपुणता का अभाव है, वहां विधि के अधीन समान न्याय की असफलता हो सकती है। हमारी न्याय-व्यवस्था, जो एंग्लो-अमरीकी नमूने पर बनी है, और हमारी न्यायिक प्रक्रिया, जो उसी प्रकार की विधिक तकनीक से प्रेरित है, विधि के अधीन समान न्याय की गाड़ी चलाने के लिए वकील की शक्ति के सहयोग को अनिवार्य बनाती है।" निर्धनों और अभावग्रस्त लोगों के लिए निःशुल्क विधिक सेवा "युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत" प्रक्रिया का आवश्यक तत्व है। न्यायाधीशों और न्यायविदों द्वारा इस मत के समर्थन में की गई प्राधिकारिक घोषणाओं को उद्धृत करना आवश्यक नहीं है कि वकील की सेवा के बिना अभियुक्त व्यक्ति 'युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत' प्रक्रिया से वंचित हो जाएगा। जस्टिस ब्लैक ने **गिडियान** बनाम **वेनराइट**[2] में निम्नलिखित मत व्यक्त किया था:—

> "इन पूर्व-निर्णयों द्वारा ही नहीं, बल्कि तर्क और विचार द्वारा भी हम से यह मानने की अपेक्षा है कि हमारी दाण्डिक न्याय-पद्धति में जिसमें विरोधी पक्ष होते हैं, न्यायालय में आने वाले उस व्यक्ति के लिए जो वकील नहीं रख सकता, उचित विचारण तब तक सुनिश्चित

---

[1] [1979] 3 उम० नि० प०=(1978) 3 एस० सी० सी० 544.

[2] [1962] 372 यू० एस० 335=9 लाइयर्स एडीशन सैकण्ड 799.

नहीं किया जा सकता जब तक कि उसके लिए काउन्सेल की व्यवस्था न कर दी जाए। हमें यह स्पष्ट शर्त प्रतीत होती है। राज्य और संघ दोनों की सरकारें बिल्कुल उचित ही अपराधों के अभियुक्त प्रतिवादियों के विचारण के लिए तन्त्र स्थापित करने के लिए बड़ी-बड़ी धनराशि व्यय करती हैं। अभियोजन के लिए वकील सर्वत्र व्यवस्थित समाज में लोक-हित की संरक्षा के लिए आवश्यक समझे जाते हैं। इसी प्रकार, अपराध से आरोपित बहुत कम ऐसे प्रतिवादी हैं जो अपने प्रतिवाद तैयार करने और प्रस्तुत करने के लिए ऐसे सर्वोत्तम वकील रखने में असफल रहते हों, जिन्हें वे प्राप्त कर सकते हैं। यह बात कि सरकार अभियोजन के लिए वकील रखती है और प्रतिवादी, जिनके पास धन होता है, प्रतिवाद के लिए वकील रखते हैं, इस व्यापक विश्वास का दृढ़तम संकेत है कि दाण्डिक न्यायालयों में वकील आवश्यकता के लिए होते हैं, सुखोपभोग के लिए नहीं होते। यह हो सकता है कि कुछ देशों में अपराध से आरोपित व्यक्ति का काउन्सेल रखने का अधिकार उचित विचारण के लिए मौलिक और आवश्यक न समझा जाता हो, किन्तु हमारे देश में ऐसा समझा जाता है। प्रारम्भ से ही हमारे राज्यों के और राष्ट्रीय संविधानों और विधियों में ऐसे प्रक्रियागत और अधिष्ठायी सुरक्षोपायों पर बहुत जोर दिया गया है जो निष्पक्ष अधिकरणों के समक्ष, जिनमें प्रत्येक प्रतिवादी विधि के समक्ष समान होता है, उचित विचारणों को सुनिश्चित करने के लिए अधिकल्पित हैं। इस श्रेष्ठ विचार को इस दशा में मूर्त रूप नहीं दिया जा सकता, यदि अपराध से आरोपित निर्धन व्यक्ति को अपने पर अभियोग लगाने वाले का सामना अपनी सहायता के लिए वकील के बिना करना पड़ता है।''

उचित प्रक्रिया के आवश्यक तत्व के रूप में निःशुल्क विधिक सेवा का वर्णन **जॉन रिचर्ड आर्गरसिंगर** बनाम **रेमण्ड हेमलिन**[1] में न्यायाधिपति डगलस के निर्णय से उद्धृत निम्नलिखित उद्धरण में भी पाया जाता है :—

''अनेक मामलों में सुनवाई के अधिकार का उस दशा में कोई फायदा नहीं है, यदि उसके अन्तर्गत काउन्सेल द्वारा सुनवाई का

1 [1972] 404 यू० एस० 25=35 लाइयर्स एडीशन सैकण्ड 530.

1979(3) eILR(PAT) SC 1

अधिकार न आता हो। बुद्धिमान और शिक्षित सामान्य व्यक्ति के पास भी विधि के विज्ञान का थोड़ा ही ज्ञान होता है और कभी-कभी तो कुछ भी नहीं होता। अपराध का आरोप लगने पर वह साधारणतया स्वयं इस बात का अवधारण करने में असमर्थ होता है कि अभ्यारोपण उचित है या अनुचित। वह साक्ष्य के नियमों से अपरिचित होता है। काउन्सेल की सहायता न मिलने पर उसका विचारण समुचित आरोप के बिना हो सकता है और उसे असक्षम साक्ष्य या विवाद्यक उस असंगत साक्ष्य या अन्यथा अग्राह्य साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्ध किया जा सकता है। उसमें अपने परिवाद की पर्याप्त रूप से तैयारी के लिए कुशलता और ज्ञान दोनों का अभाव होता है, चाहे उसके पास पूर्ण ज्ञान होता है। उसे अपने विरुद्ध कार्यवाही में पग-पग पर काउन्सेल के मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। इसके बिना उसे, अपराधी न होने पर भी, दोषसिद्धि का खतरा होता है, क्योंकि उसे इस बात का ज्ञान नहीं होता कि अपनी निर्दोषिता को कैसे सिद्ध किया जाए। यदि यह बात बुद्धिमान लोगों के विषय में सत्य है, तो अज्ञानी और अशिक्षित या कमजोर बुद्धि वाले लोगों के विषय में तो बहुत अधिक सत्य है।

यह हो सकता है कि कुछ देशों में अपराध से आरोपित व्यक्ति के काउन्सेल के अधिकार को उचित विचारण के लिए मौलिक और आवश्यक न समझा जाता हो, किन्तु हमारे देश में ऐसा समझा जाता है। प्रारम्भ से ही हमारे राज्यों के और राष्ट्रीय संविधानों और विधियों में ऐसे प्रक्रियागत और अधिष्ठायी सुरक्षोपायों पर बहुत जोर दिया गया है जो निष्पक्ष अधिकरणों के समक्ष, जिनमें प्रत्येक प्रतिवादी विधि के समक्ष समान होता है, उचित विचारणों को सुनिश्चित करने के लिए अभिकल्पित हैं। इस श्रेष्ठ विचार को उस दशा में मूर्तरूप नहीं दिया जा सकता, यदि अपराध से आरोपित निर्धन व्यक्ति को अपने पर अभियोग लगाने वाले का सामना अपनी सहायता के लिए वकील के बिना करना पड़ता है।

पावेल और गिडियान वाले दोनों ही मामलों में घोर अपराध अन्तर्वलित थे। किन्तु उनमें दिया गया तर्क ऐसे प्रत्येक दाण्डिक विचारण में सुसंगत है जिनमें अभियुक्त को उसकी स्वाधीनता से वंचित किया जाता है।

× × × ×

न्यायालयों को उस सम्भावित दण्ड पर विचार करना चाहिए जो दोषसिद्ध होने पर दिया जाएगा। सम्भावित परिणाम जितने अधिक गम्भीर होंगे, इस बात की सम्भाव्यता उतनी ही अधिक होगी कि वकील नियुक्त किया जाना चाहिए....न्यायालयों को प्रत्येक मामले की विशिष्ट बातों पर विचार करना चाहिए। निस्सन्देह उनका पूर्वानुमान सर्वाधिक कठिन है। एक सुसंगत बात किसी प्रतिवादी का अपना पक्षकथन प्रस्तुत करने सम्बन्धी सक्षमता है।" (रेखांकन हमारे द्वारा जोर देने के लिए किया गया)

7. हम मौलिक सांविधानिक नीति-निदेशक तत्व के अनुच्छेद 39-क का भी उल्लेख करना चाहेंगे जो निम्नलिखित रूप में है :—

"39-क. समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता:—राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक व्यवस्था इस प्रकार काम करे कि न्याय समान अवसर के आधार पर, सुलभ हो और वह विशिष्टतया यह सुनिश्चित करने के लिए कि अधिक या किसी अन्य निर्योग्ता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए, उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या अन्य प्रकार से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा।"

इस अनुच्छेद में भी इस बात पर जोर दिया गया है कि निःशुल्क विधिक सेवा 'युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत' प्रक्रिया का अभिन्न अंग है, क्योंकि इसके बिना आर्थिक या अन्य आवश्यकताओं वाला व्यक्ति न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित हो जाएगा। अतः निःशुल्क विधिक सेवा 'युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत' प्रक्रिया का ऐसे व्यक्ति के लिए आवश्यक लक्षण है जिस पर किसी अपराध का अभियोग है और उसके बारे में यह अवश्य अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वह अनुच्छेद 21 की गारण्टी में अन्तर्निहित है। यह ऐसे प्रत्येक अभियुक्त व्यक्ति का सांविधानिक अधिकार है जो निर्धनता, गरीबी या सम्पर्कहीनता की स्थितियों जैसे कारणों से वकील रखने या विधिक सेवा प्राप्त करने में असमर्थ है और राज्य को यह परमादेश है कि वह अभियुक्त व्यक्ति के लिए उस दशा में वकील की व्यवस्था करे जब मामले की परिस्थितियों और न्याय की आवश्यकताओं में ऐसा अपेक्षित है, परन्तु, निस्सन्देह, यह तभी होगा जब कि अभियुक्त व्यक्ति ऐसे वकील की व्यवस्था पर आपत्ति नहीं करता। इसलिए हम यह निदेश देते हैं कि

1979(3) eILR(PAT) SC 1

प्रतिप्रेषण की अगली तारीखों को जब जमानतीय अपराधों से आरोपित विचारणाधीन कैदी मजिस्ट्रेटों के समक्ष पेश किए जाएंगे, तब राज्य सरकार जमानत के लिए आवेदन करने के प्रयोजन से अपने खर्चे पर उनके लिए वकील की व्यवस्था करेगी, परन्तु यह तब जबकि ऐसे विचारणाधीन कैदियों की ओर से ऐसे वकील पर कोई आपत्ति न की जाए और यदि जमानत के लिए आवेदन किया जाएगा, तो मजिस्ट्रेट उसका निपटारा तारीख 12 फरवरी, 1979 वाले हमारे निर्णय में दी गई प्रमुख बातों के अनुसार करेगा। राज्य सरकार आज से छह सप्ताह की कालावधि के भीतर पटना उच्च न्यायालय को यह रिपोर्ट देगी कि उसने इस निदेश का अनुपालन कर दिया है।

8. ऐसे विभिन्न विचारणाधीन कैदी भी हैं जो उस अधिकतम दण्ड की आधी कालावधि से अधिक कालावधियों तक जेल में रह चुके हैं जो उन्हें उस दशा में दी जा सकती थी यदि उन पर आरोपित अपराधों के लिए उनकी दोषसिद्धि कर दी जाती। उदाहरण के लिए, बुद्धु माहली, जो रांची केन्द्रीय जेल में विचारणाधीन कैदियों की सूची में मद संख्या 1 है, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 395 और भारतीय आयुध अधिनियम की धारा 25 के अधीन अपराधों के लिए 21 नवम्बर, 1972 से जेल में है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 395 के अधीन अपराध के लिए अधिकतम दण्ड 10 वर्ष है जबकि भारतीय आयुध अधिनियम की धारा 25 के अधीन अपराध के लिए इससे बहुत कम दण्ड है। फिर भी बुद्धु माहली छह वर्ष से भी अधिक के लिए विचारणाधीन कैदी के रूप में जेल में रह चुका है। इसी प्रकार जयराम मांझी, सोमरा मांझी, जुगल मुण्डा और गुलाब मुण्डा, जो रांची केन्द्रीय जेल में परिरुद्ध विचारणाधीन कैदियों की सूची में मद संख्या 2 से 7 तक हैं, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 395 के अधीन अपराध के लिए, जो 10 वर्ष के कारावास की अधिकतम अवधि से दण्डनीय है, 21 फरवरी, 1974 से अर्थात् पांच-पांच वर्ष से अधिक की कालावधि के लिए विचारणाधीन कैदियों के रूप में जेल में रह रहे हैं। ऐसे असंख्य अन्य उदाहरण हैं जो बिहार राज्य की ओर से फाइल की गई विचारणाधीन कैदियों की सूची में से आसानी से प्राप्त किए जा सकते हैं और जिनमें विचारणाधीन कैदी कारावास की उस अधिकतम अवधि के आधे से भी अधिक के लिए जेल में रह चुके हैं जिसके लिए उन्हें, दोषसिद्ध होने पर, दण्डादिष्ट किया जा सकता था। इस बात का कोई कारण नहीं है कि इन

विचारणाधीन कैदियों को जेल में केवल इसलिए क्यों सड़ने दिया जाए क्योंकि राज्य युक्तियुक्त कालावधि के भीतर उनका विचारण करने की स्थिति में नहीं है। यह सम्भव है कि उनमें से कुछ को, विचारण किए जाने पर, उनके विरुद्ध आरोपित अपराधों से दोषमुक्त कर दिया जाए और ऐसी हालत में वे ऐसे अपराओं के लिए अनेक वर्ष जेल में बिता चुके होंगे जिनके विषय में अन्ततोगत्वा यह निष्कर्ष है कि वे उनके द्वारा नहीं किए गए थे। न्यायप्रशासन की हमारी पद्धति में इन लोगों का विश्वास क्या होगा ? क्या उनके मन में उस समाज के विरुद्ध निराशा और कटुता की भावना पैदा हो नहीं जाएगी जो उन्हें ऐसे अपराधों के लिए अनेक वर्षों तक जेल में रखता है जो उन्होंने किए ही नहीं थे ? इसलिए यह नितान्त आवश्यक है कि अपराधों के अभियुक्त व्यक्तियों का विचारण शीघ्रता से किया जाए जिससे कि ऐसे मामलों में जिनमें जमानत, विवेकाधिकार का समुचित प्रयोग करते हुए, नामंजूर कर दी जाती है, अभियुक्त व्यक्ति नितान्त आवश्यक कालावधि से अधिक कालावधि तक जेल में न रहे, क्योंकि ऐसे अनेक विचारणाधीन कैदी हैं जो कारावास की उस अधिकतम अवधि के आधे से अधिक तक के लिए जेल में रह चुके हैं जिसके लिए उन्हें, दोषसिद्ध होने पर दण्डादिष्ट किया जा सकता था, इसलिए हम यह निदेश देते हैं कि अगली प्रतिप्रेषण की तारीखों को जब उन्हें मजिस्ट्रेटों या सेशन न्यायालयों के समक्ष पेश किया जाएगा, तब राज्य सरकार उनके लिए जमानत के लिए आवेदन करने के प्रयोजन और प्रतिप्रेषण का विरोध करने के प्रयोजन से अपने खर्चे से वकील की व्यवस्था करेगी, परन्तु यह तब जब उनकी ओर से ऐसे वकील पर कोई आपत्ति न की जाए और यदि जमानत के लिए आवेदन किया जाता है तो, यथास्थिति, मजिस्ट्रेट या सेशन न्यायालय उसका निपटारा तारीख 12 फ़रवरी, 1979 वाले हमारे निर्णय में उपदर्शित प्रमुख मार्गदर्शन के अनुसार करेगा। राज्य सरकार इस निदेश का अनुपालन यथा-सम्भव आज से छह सप्ताह की कालावधि के भीतर करेगी और पटना उच्च न्यायालय को अनुपालन की रिपोर्ट प्रस्तुत करेगी।

9. हम इस अवसर पर भारत सरकार और राज्य सरकारों के मन पर यह प्रभाव डालना चाहते हैं कि सामान्य व्यक्ति के पास न्याय पहुंचाने की दृष्टि से गतिशील और व्यापक विधिक सेवा के कार्यक्रम की तत्काल आवश्यकता है। दुर्भाग्यवश, आजकल हमारे देश में निर्धन लोग न्याय-व्यवस्था का उपयोग, उस पर अधिक खर्च होने के कारण नहीं कर सकते, जिसके परिणामस्वरूप हमारी विधि-व्यवस्था की उनके जीवन की दशाओं में परिवर्तन करने

1979(3) eILR(PAT) SC 1

और उन्हें न्याय प्रदान करने के सामर्थ्य से विश्वास उठता जा रहा है। जब कभी निर्धन लोग विधि-व्यवस्था के सम्पर्क में आते हैं, तब उन्हें सदैव हानि उठानी पड़ती है। वे सदैव "निर्धनों की विधि" की बजाय "निर्धनों के लिए विधि" के सम्पर्क में आते हैं। वे विधि को रहस्यमय और निषेध करने वाली चीज समझते हैं, जो सदैव उनसे कुछ छीनती है, और उसे सामाजिक अर्थ-व्यवस्था में परिवर्तन करने और उनको अधिकार तथा फायदे प्रदान करके, उनके जीवन की दशा सुधारने वाली सकारात्मक और रचनात्मक सामाजिक युक्ति नहीं समझते। परिणाम यह है कि समुदाय के कमजोर वर्गों का विश्वास विधि-व्यवस्था पर नहीं रहा। अतः यह आवश्यक है कि हमें विधिकता में समान न्याय का संचार करना चाहिए और विधिक सेवा की गतिशील तथा क्रियाशील स्कीम द्वारा ही ऐसा किया जा सकता है। हम सरकार को माननीय न्यायाधिपति ब्रेनन के निम्नलिखित प्रसिद्ध शब्दों को स्मरण कराना चाहेंगे :—

> "मानव हृदय में अन्याय की निरन्तर भावना से अधिक कोई चीज नहीं चुभती। हम बीमारी सहन कर सकते हैं। किन्तु अन्याय हमें क्रान्ति की प्रेरणा देता है। जब केवल धनी व्यक्ति ही विधि का सन्देहपूर्ण विलासिता की वस्तु के रूप में उपभोग करते हैं और निर्धन लोग, जिन्हें इसकी सर्वाधिक आवश्यकता होती है, इसे इसलिए प्राप्त नहीं कर सकते क्योंकि इसका व्यय इसे उनकी पहुंच से बाहर कर देता है, तब स्वतन्त्र लोकतन्त्र के निरन्तर अस्तित्व को जो खतरा है, वह काल्पनिक नहीं, बल्कि बहुत वास्तविक होता है, क्योंकि लोकतन्त्र का अस्तित्व ही न्यायतन्त्र को इतना प्रभावशाली बना देने पर निर्भर है कि प्रत्येक नागरिक उसमें विश्वास करे और उसकी निष्पक्षता और उसके औचित्य का फायदा उठाए।"

हम समृद्ध अमेरिका के सम्बन्ध में वर्षों पहले लीमैन एब्बट द्वारा कहे गए निम्नलिखित शब्दों को भी स्मरण कराना चाहेंगे :—

> "यदि कभी ऐसा समय आ जाए, जब इस नगर में केवल धनी लोग ही सन्देहपूर्ण विलासिता की वस्तु के रूप में विधि का उपभोग कर सकें, जब निर्धन लोग, जिन्हें इसकी सर्वाधिक आवश्यकता होती है, इसे प्राप्त न कर सकें और जब न्यायालय-कक्ष का द्वार केवल सोने की चाबी से ही खोला जा सके, तब क्रान्ति के बीज बो दिए

1979(3) eILR(PAT) SC 1

जाएंगे, क्रान्ति की अग्नि सुलग जाएगी और वह लोगों के हाथों में रख दी जाएगी और उसके बाद लोग जो क्रान्ति करेंगे, वह लगभग न्यायोचित होगी।"

हम भारत सरकार और राज्य सरकारों से यह दृढ़ सिफारिश करना चाहेंगे कि अब समय आ गया है कि देश में व्यापक विधिक सेवा कार्यक्रम चालू किया जाए। यह अनुच्छेद 14 में अन्तर्निहित समान न्याय और अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त प्राण और स्वाधीनता के अधिकार का परमादेश ही नहीं है, बल्कि अनुच्छेद 39-क में दिए गए सांविधानिक निदेश की अनिवार्यता भी है।

10. प्रत्यर्थियों की ओर से फाइल किए गए प्रतिशपथपत्र से हम पाते हैं कि राज्य सरकार ने इस बात के कोई कारण नहीं बताएं हैं कि विचारणाधीन कैदियों का विचारण प्रारम्भ करने में इतना अधिक विलम्ब क्यों हुआ जैसा कि तारीख 26 फरवरी, 1979 वाले हमारे पूर्ववर्ती निर्णय में अभिनिर्धारित किया गया है, शीघ्रता से विचारण अनुच्छेद 21 द्वारा गारण्टीकृत 'युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत' प्रक्रिया का एक आवश्यक अंग है और यह राज्य का सांविधानिक दायित्व है कि वह ऐसी प्रक्रिया निर्धारित करे जो अभियुक्त के शीघ्रता से विचारण को सुनिश्चित करे। राज्य सरकार को अभियुक्त के शीघ्रता से विचारण के सांविधानिक अधिकार से इस आधार पर वंचित करने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती कि राज्य के पास शीघ्रता से विचारण सुनिश्चित करने की दृष्टि से प्रशासनिक और न्यायिक व्यवस्था में सुधार के लिए आवश्यक व्यय उपगत करने के लिए प्रर्याप्त वित्तीय साधन नहीं हैं। राज्य की वित्तीय कठिनाइयां हो सकती हैं और व्यय के लिए इसकी पूर्विकताएं हो सकती हैं किन्तु, जैसा कि न्यायालय ने जेम्स ह्यूम बनाम जस्टिस जामिन बेंमैल्कम[1] में कहा है : "विधि किसी सरकार को निर्धनता के आधार पर अपने नागरिकों को सांविधानिक अधिकारों से वंचित करने की अनुज्ञा नहीं देती।" न्यायाधिपति ब्लैकमम द्वारा विलियम किंग जैकसन बनाम ओ० ई० बिशप[2] में कही गई निम्नलिखित बात भी उल्लेखनीय है :—

"इस समय मानवीय विचारों और सांविधानिक अपेक्षाओं का माप धन सम्बन्धी विचारों से नहीं हो सकता......"

---

[1] [1974] 377 एफ० सप्लीमेण्ट 995.

[2] [1968] 404 एफ० सैकण्ड 571.

1979(3) eILR(PAT) SC 1

इसी प्रकार **जस्टिस लारेन्स हाल्ट** बनाम **राबर्ट सार्वेर**[1] में भी, जिसकी 442 एफ० सप्ली० 362 में पुष्टि कर दी गई थी, न्यायालय ने सुधार-गृहों की व्यवस्था बनाए रखने सम्बन्धी राज्य की बाध्यता के विषय में जो आठवें संशोधन का अतिक्रमण नहीं करती थी, उचित रूप से और वाक्पटुता के साथ कहा है :—

> 'इस विषय में कोई सन्देह नहीं रहना चाहिए कि प्रत्यर्थियों का वर्तमान असांविधानिकताओं को समाप्त करने का दायित्व इस बात पर निर्भर नहीं है कि विधानमण्डल क्या करता है या राज्यपाल क्या करता है या वास्तव में प्रत्यर्थी क्या करने में समर्थ है। यदि सुधार-गृह का प्रवर्तन अरकंसास-द्वारा दिया जाना है तो उसे ऐसी व्यवस्था करनी होगी जो संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान द्वारा अपेक्षित है।"

राज्य अभियुक्त के लिए शीघ्रता से विचारण की व्यवस्था करने की अपनी सांविधानिक बाध्यता से वित्तीय या प्रशासनिक अक्षमता का विवेचन करके नहीं बच सकता। राज्य को यह सांविधानिक परमादेश है कि वह शीघ्रता से विचारण सुनिश्चित करे और इस प्रयोजन के लिए जो कुछ भी आवश्यक है वह राज्य को करना पड़ेगा। इस न्यायालय की भी लोगों के मूल अधिकारों के संरक्षक के रूप में और सजग प्रहरी के रूप में राज्य को आवश्यक निदेश जारी करके, जिनमें सकारात्मक कार्यवाही करना, जैसे अन्वेषणतन्त्र में बढ़ोतरी करना और उसे सबल बनाना, नए न्यायालय स्थापित करना, नए न्यायालय भवनों का निर्माण करना, न्यायालयों के लिए अधिक कर्मचारिवृन्द और साधनों की व्यवस्था करना, अतिरिक्त न्यायाधीशों की नियुक्ति करना और शीघ्रता से विचारण को सुनिश्चित करने के लिए प्रकल्पित अन्य उपाय करना सम्मिलित है, अभियुक्त के शीघ्रता से विचारण के मूल अधिकार को प्रवृत्त करने की सांविधानिक बाध्यता भी है। हम यह पाते हैं कि वास्तव में संयुक्त राज्य अमेरिका में न्यायालयों ने, जहां तक कारावास-सुधार का सम्बन्ध है, आठवें संशोधन की क्रियाशील व्यापकता का उपयोग करके यह गतिशील और रचनात्मक भूमिका अपनायी है। न्यायालयों में **जस्टिस लारेन्स हॉल्ट** बनाम **राबर्ट सार्वेर**[1] **चार्ल्स जोन्स** बनाम **सोल विट्टनबर्ग**[2], **एन० एच० न्यूमैन** बनाम **स्टेट आफ**

---

[1] [1970] 309 एफ० सप्लीमेण्ट 362.

[2] [1971] 330 एफ० सप्लीमेण्ट 707.

1979(3) eILR(PAT) SC 1

अलबामा[1] और नजारेथ गेट्स बनाम जान कोलियर[2] जैसे विनिश्चयों के माध्यम से प्राचीन युग के अनेक कारावासों और जेलों में सारवान् सुधार करने का आदेश दिया है। अन्तिम उल्लिखित मामले में न्यायालय ने प्रकथन किया कि उसका "डिक्री को इस प्रकार बनाने का कर्त्तव्य है जिसमें प्रतिवादियों से पार्चमैन की उन दशाओं और परिपाटियों को समाप्त करने की अपेक्षा होगी जिन्हें संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान का अतिक्रमण करने वाली पाया गया है" और इस कर्त्तव्य के निर्वहन में न्यायालय ने राज्य के सुधार-गृहों में परिरुद्ध व्यक्तियों की दशा सुधारने के लिए विभिन्न निदेश दिए। सांविधानिक अधिकारों की संरक्षा करने की इस न्यायालय की शक्तियां व्यापकतम् हैं और हमें इस बात का कोई कारण नहीं दिखाई देता कि इस न्यायालय को उसी प्रकार का सक्रिय दृष्टिकोण क्यों नहीं अपनाना चाहिए और राज्य को ऐसे निदेश क्यों नहीं जारी करने चाहिएं जिनमें शीघ्रता से विचारण के मूल अधिकार का प्रवर्तन सुनिश्चित करने की दृष्टि से सकारात्मक कार्यवाही करना अन्तर्वलित है। किन्तु न्यायालय को इस सांविधानिक बाध्यता का निर्वहन करने में समर्थ बनाने के लिए यह आवश्यक है कि न्यायालय के पास समस्या पर प्रभाव डालने वाली अपेक्षित जानकारी होनी चाहिए। इसलिए हम बिहार राज्य को निदेश देते हैं कि वह आज से तीन सप्ताह के भीतर बिहार राज्य में मजिस्ट्रेटों के न्यायालयों और सेशन न्यायालयों की अवस्थितियों के बारे में, उन न्यायालयों में लम्बित विवादों का वर्ष प्रति वर्ष का विवरण देते हुए उन न्यायालयों में से प्रत्येक में 31 दिसम्बर, 1978 को लम्बित मामलों की कुल संख्या सहित विवरण दे और यह भी स्पष्ट करे की उनमें से ऐसे मामलों का निपटारा करना सम्भव क्यों नहीं हो सकता है जो छह मास से भी अधिक से लम्बित हैं। यदि पटना उच्च न्यायालय भी आज से तीन सप्ताह के भीतर हमें उपर्युक्त विवरण भेजे तो बहुत अच्छा होगा, क्योंकि उच्च न्यायालय के प्रशासनिक पक्ष में ऐसा अभिलेख अवश्य होगा जिससे इन विवरणों को आसानी से एकत्र किया जा सकता है। हम बिहार राज्य को यह निदेश भी देते हैं कि वह आज से तीन सप्ताह के भीतर उन मामलों की संख्या की विशिष्टियां दे जिनमें प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दाखिल कर दी गई है और 31 दिसम्बर, 1978 को राज्य के प्रत्येक उपखण्ड में पुलिस द्वारा अन्वेषण के लिए लम्बित हैं और जहां ऐसे मामले छह मास से अधिक से अन्वेषण के

---

[1] [1972] 349 एफ० सप्लीमेण्ट 278.

[2] [1972] 349 एफ० सप्लीमेण्ट 881.

1979(3) eILR(PAT) SC 1

लिए लम्बित हैं, वहां बिहार राज्य स्थूल रूप से यह कारण बताएगा कि अन्वेषण प्रक्रिया में इतना विलम्ब क्यों हुआ। अब रिट पिटीशन सुनवाई और अन्तिम निपटारे के लिए 4 अप्रैल, 1979 को प्रस्तुत किया जाएगा। हमने सुप्रीम कोर्ट बार एसोसिएशन को पहले ही सूचना जारी कर दी है कि वह उपस्थित होकर रिट पिटीशन में उत्पन्न विवाद्यकों पर अपना निवेदन करे, क्योंकि वे बहुत महत्वपूर्ण हैं। हमें आशा और विश्वास है कि सुप्रीम कोर्ट बार एसोसिएशन सूचना का उत्तर देगा और रिट पिटीशन की सुनवाई के समय न्यायालय की सहायता के लिए उपस्थित होगा।

तदनुसार आदेश दिया गया।

श्या०/श्री०